छत्तीसगढ़ विधान सभा सचिवालय

माननीय अध्यक्ष श्री प्रेम प्रकाश पाण्डेय का सम्बोधन

(पीठासीन अधिकारियों की आपात बैठक, दिनांक 4 फरवरी, 2006)

इस सम्मेलन के सभापति माननीय लोक सभा अध्यक्ष महोदय, विधान मण्डलों के समस्त उपस्थित मेरे साथी अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष महोदय ।

आज हम यहॉ सब एक ऐसे विषय पर विचार–विमर्श के लिए एकत्रित हुए हैं, जिसका प्रभाव विधायिका एवं न्यायपालिका के संबंधों पर आने वाले समय में परिलक्षित होगा । संविधान के लागू होने के पश्चात् विधायिका एवं न्यायपालिका के मध्य जब भी कभी अप्रिय स्थिति निर्मित हुई तो उसके मूल में नागरिकों के मूल अधिकार एवं संसदीय विशेषाधिकार के संवैधानिक प्रावधान रहे हैं ।

हमारे संविधान में संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या करने का अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया है और संविधान के अनुच्छेद 141 में यह भी प्रावधानित किया गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णित स्वरूप में विधि लागू होगी । संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत किसी भी नागरिक को न्यायालय में याचिका दायर करने का अधिकार प्राप्त है और यह निर्धारित किया जा चुका है कि नागरिकों के मूल अधिकार अन्य संवैधानिक प्रावधानों से प्रमुख है किन्तु जब प्रश्न संसदीय विशेषाधिकारों का उदित होता हो, तब संसदीय प्रजातंत्र के सुचारू संचालन के लिए यह आवश्यक है कि संसद एवं विधान मण्डलों के विशेषाधिकार न केवल निर्विघ्न रहे अपितु इन सदनों को सभा की कार्यवाही के दौरान सम्पादित विशेषाधिकार भंग के मामलों में दण्डित करने की शक्ति को चुनौती नहीं दी जा सकती और ऐसे मामलों में विधान मण्डलों के सदन सर्वोपरि हैं और न्यायालय के हस्तक्षेप योग्य नहीं । अर्थात कोई भी कार्य चाहे वह आपराधिक श्रेणी का ही क्यों न हो और सभा के बाहर ही क्यों न किया गया हो और यदि ऐसे कृत्य से सदन के विशेषाधिकार के हनन का प्रश्न उपस्थित होता है अथवा किसी सदस्य का सभा में सम्पादित होने वाला कार्य, कथन या मत प्रभावित होता हो, तब ऐसे मामलों में संसदीय विशेषाधिकारों के हनन के सदृश्य सभा कार्यवाही आरंभ कर सकती है और अपने सदस्यों को दण्डित भी कर सकती है और यह भी निर्धारित कर सकती है कि दण्ड का स्वरूप कैसा हो । इस संबंध में संविधान के अनुच्छेद 105(3) में यह स्पष्ट उल्लेख है कि इस सदन व सदन की समितियों को वे ही विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो ब्रिटेन की संसद को प्राप्त थे और चूकि

निरंतर..........

ब्रिटेन की संसद को सभा की अवमानना अथवा विशेषाधिकार भंग के मामले में किसी सदस्य की सदस्यता समाप्त करने का अधिकार प्राप्त है, अतः भारत के विधान मण्डलों को भी संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने की अधिकारिता है ।

सभापति महोदय, यद्यपि इस महत्वपूर्ण विषय पर चर्चा के लिए यहॉ आमंत्रित किया गया है किन्तु न तो समिति का प्रतिवेदन हमें उपलब्ध कराया गया और न ही सभा की वह कार्यवाही । संभवतः केवल विचार के लिए मुद्दा यह माना गया है कि – **न्यायालय अध्यक्ष को सूचना जारी कर सकता है अथवा नहीं ?** किन्तु इसके साथ अन्य मुद्दे भी जुड़े हुए हैं, जिसके बिना मेरे मत में आज की चर्चा सार्थक नहीं होगी ।

प्रश्न यह विचारणीय है कि सभा के द्वारा दण्डित करने का प्रस्ताव पारित करने के उपरान्त दोषारोपित सदस्य जिनकी सदस्यता समाप्त कर दी गई है, उन्हें न्यायालय में जाने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? आखिर वे न्यायालय में किन आधारों पर गए और न्यायालय ने उनकी याचिका स्वीकार करते हुए संविधान पीठ को मामला क्यों सौंपा ? इन सब पर भी विचार करना अत्यावश्यक एवं समीचीन होगा ।

माननीय सभापति जी झारखण्ड मुक्ति मोर्चा* मामले में यह ठहराया जा चुका है कि संविधान के अनुच्छेद 105 के अंतर्गत सभा में कही गई किसी बात अथवा दिए गए किसी मत के संबंध में अथवा सभा की कार्यवाही को प्रक्रिया की त्रुटि के कारण न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती । जिन 11 सदस्यों की सदस्यता समिति के प्रतिवेदन की अनुशंसा को स्वीकार कर सभा के द्वारा समाप्त की गई है, प्रतिवेदन में सदस्यों के सभा के बाहर के आचरण को अनुच्छेद 105 (3) के अंतर्गत संसदीय विशेषाधिकारों के हनन अथवा सभा की अवमानना से सम्बद्ध नहीं किया गया है, अपितु मीडिया में सदस्यों का जो आचरण प्रचारित एवं प्रसारित किया गया, समिति ने उस आचरण के कारण ही सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने की अनुशंसा की और पूर्वोदाहरण के रूप में प्रतिवेदन में '**मुदगल**' मामले का उल्लेख किया । महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि जब मामला संविधान के अनुच्छेद 105(3) के अंतर्गत है ही नहीं और जैसा कि सदस्यों ने उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत याचिकाओं में उल्लेख किया है कि जिन प्रश्नों के संबंध में तथाकथित रूप से धनराशि प्राप्त किया जाना आरोपित है, वे प्रश्न सभा में ऊठाये ही नहीं गयें, अर्थात जब सदस्यता समाप्त करने की सभा की कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 105(3) के अंतर्गत सभा में कही गई किसी बात या दिये गये किसी मत के परिप्रेक्ष्य नहीं है अपितु सभा के बाहर आचरण से संबंधित है, फलस्वरूप कार्यवाही को न्यायालय से उन्मुक्ति प्राप्त ही नहीं है, ऐसी स्थिति में तो न्यायालय के द्वारा यदि मामले में हस्तक्षेप किया भी जाता है तो यह पूर्व में

* संसदीय पद्धति और व्यवहार, कौल शकधर, पृष्ठ 234 से 245

निरंतर..........

झारखण्ड मुक्ति मोर्चा मामले में संविधान पीठ के द्वारा निर्णित अनुसार न्यायालय के विचार की विषय वस्तु है ।

सभापति जी, किन्तु मैं इस अवसर पर कुछ और भी बिन्दु आपके समक्ष रखना चाहता हूँ । आज की इस बैठक में हम सब यहॉ विचार–विमर्श कर रहे हैं, उनका प्रभाव प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर बहुत लम्बा पड़ने वाला है । एक निजी टी. व्ही. चैनल द्वारा **'आपरेशन दुर्योधन'** के नाम से संसद के कुछ सदस्यों के द्वारा प्रश्न पूछने के बदले धन लेने की वीडियो क्लिपिंग दिनांक 12 से 14 दिसम्बर, 2005 तक निरंतर 3–4 दिनों तक दिखायी गयी । निश्चित तौर पर इससे हम सब न केवल आहत हुए अपितु शर्मसार भी हुए । प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जनप्रतिनिधि अत्यंत सम्मान के पात्र होते हैं और यह सदन तो सर्वोच्च सम्मानित सदन है, जो कुछ दिखाया गया उससे इस सदन की मर्यादा भी कम हुई है । हम सबने देखा कि किस प्रकार से प्रायोजित तरीके से सदस्यों को प्रश्न पूछने के बदले में स्वयं होकर धन दिए जाने का प्रस्ताव किया गया, किस प्रकार से लालच देकर सदस्यों के सभा से संबंधित कार्यों को प्रभावित करने की चेष्टा की गई और यह कार्य कोई एक–दो दिनों में नहीं अपितु जैसा कि प्रचारित और प्रसारित किया गया माह अप्रैल से माह नवम्बर तक निरंतर जारी रहा । ऐसा कहा भी गया कि स्ट्रिंग आपरेशन में हुए व्यय की प्रतिपूर्ति के लिए **'आज तक'** चैनल से व्यावसायिक अनुबंध किया गया । **'आज तक'** चैनल के प्रतिनिधि के द्वारा यह भी बार–बार उद्‌घोषित किया गया कि – ''**हमारी सदन के प्रति पूरी आस्था है और हम इसका पूरा सम्मान करते हैं और इसका आशय इस सभा की गरिमा को कम करना नहीं है अपितु हमें यह जानकारी प्राप्त हुई थी कि प्रश्न करने के बदले में राशि प्राप्त की जाती है और हमने वास्तविक तथ्य ही जनता के समक्ष रखने का प्रयास किया ।**''

माननीय सभापति महोदय, क्या यह सब उचित है ? यदि सदस्यों को उनके संसदीय कर्तव्यों में प्रभावित करने की चेष्टा की जाती है तो विशेषाधिकार भंग अथवा सभा की अवमानना का मामला उनके विरूद्ध, जो सदस्यों को प्रलोभन देकर उनके संसदीय कर्तव्यों को प्रभावित कर रहे हैं, आरंभ होना चाहिये था। सम्पूर्ण मामला प्रायोजित तरीके से लाभ कमाने के उद्‌देश्य से संचालित किया गया और व्यावसायिक दृष्टिकोण से सदस्यों को संसदीय कर्तव्यों के निर्वहन में प्रभावित किया गया ।

''आज तक'' चैनल और मीडिया के प्रतिनिधि सदस्यों के संसदीय कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा पहुँचाने और इस प्रकार सभा की कार्यवाही को प्रभावित करने के लिए दोषी है किन्तु इस संबंध में समिति ने भी किसी प्रकार की अनुशंसा नहीं की, इतने गंभीर मामले में संबंधितों के विरूद्ध संसद के द्वारा भी कोई कार्यवाही आरंभ नहीं की गई । मेरा तो यह मानना है कि इस संबंध में शीघ्र कार्यवाही आरंभ की जानी चाहिए ।

निरंतर..........

माननीय सभापति महोदय, ''**आज तक**'' चैनल देखकर विधान मण्डलों के समस्त प्रतिनिधि चाहे वे देश के किसी भी कोने में हो स्तब्ध रह गए । सबने एक स्वर से ऐसे सदस्यों के विरूद्ध कार्यवाही करने के संबंध में वक्तव्य दिए । विधान मण्डलों की गरिमा बनी रहे, हम सभी पीठासीन अधिकारी इस पक्ष में हैं, शायद ही मेरे मत से कोई भिन्न राय रखता होगा । किन्तु सभापति महोदय मेरे मत में यदि हम किसी भी व्यक्ति को, किसी सदस्य को इस सदन की गरिमा कम करने, इस सदन की गरिमा को आघात पहुॅचाने जैसे कृत्य के लिए दण्डित करना चाहते हैं तो न्याय का सबसे पहला सिद्धांत यह है कि उस व्यक्ति को अपने बचाव का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए । जब प्रावधिक संसद थी और संसद के एक सदस्य **श्री मुदगल** द्वारा कथित रिश्वत लेने के मामले की जॉच करने का निर्णय लिया गया था तब सदस्य के आचरण की जॉच के लिए गठित समिति श्री मुदगल को युक्तियुक्तपूर्ण अवसर बचाव के लिए दिया था और फिर समिति ने अपना प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया ।

हमने संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध नहीं किया है और संवैधानिक प्रावधानों के तहत विधान मण्डल एवं इसके सदस्यों को वे ही विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जो हाऊस आफ कामन्स को, तो हमें वैसी ही प्रक्रिया अपनानी चाहिए अर्थात ऐसे मामले या तो आचरण समिति को संदर्भित किये जाऐं अथवा विशेषाधिकार समिति को । इन समितियों की प्रक्रिया निर्धारित है । ये **अर्ध न्यायिक** समितियॉ होती हैं, दण्डित करने के अधिकारों से युक्त इन समितियों की सम्पूर्ण प्रक्रिया भी अन्य समितियों से भिन्न है, इनमें अधिवक्ताओं को उपस्थित होने की अनुमति प्रदान की जाती है, बचाव के लिए पर्याप्त एवं युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाता है ताकि इस बात की सम्भावना लेशमात्र भी न रहे कि किसी को युक्तियुक्त एवं पर्याप्त अवसर दिए बिना दण्डित कर दिया जाए ।

वर्ष 1951 में श्री मुदगल के आचरण की जॉच के लिये जब समिति का गठन किया गया था, तब हमारा संसदीय प्रजातंत्र आरंभिक अवस्था में था, न तो परम्परायें विकसित और स्थापित हुई थी और न ही सदस्यों के आचरण के संबंध में जॉच के लिए ''**आचरण समिति**'' (Ethics Committee) का गठन हुआ था । किन्तु अब इन 55 वर्षों में न केवल परम्परायें विकसित हुई हैं अपितु स्थापित भी हुई हैं । हमने ''**आचरण समिति**'' (Ethics Committee) का गठन भी किया है, इसकी कार्यविधि के नियम भी हैं । विशेषाधिकार समिति भी नियमों के अन्तर्गत गठित की जाती है, यदि इन समितियों के माध्यम से ही मामले की विवेचना की जाती, दोषारोपित सदस्यों को पर्याप्त अवसर देकर इन समितियों की छानबीन, जॉच और अनुसंधान के आधार पर निर्णय लिया जाता तो अधिक उपयुक्त होता।

सभापति जी आपने यह निर्णय लिया कि – ''**न तो आप न्यायालय की सूचना को प्राप्त करेंगे और न ही उसका कोई संज्ञान लेंगे**'', वह निर्णय संसदीय

निरंतर..........

परम्पराओं के अनुरूप ही है । मध्य प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष को भी उच्चतम न्यायालय की ओर से दिनांक 8 जुलाई, 1991 को उच्चतम न्यायालय में दलबदल संबंध माननीय अध्यक्ष के निर्णय को चुनौती देते हुए श्री लक्ष्मण जयदेव सतपथी एवं अन्य सदस्यों द्वारा दायर एक रीट पीटिशन के संबंध में नोटिस प्राप्त हुआ था तथा संसद एवं विधान मण्डलों की मान्य प्रक्रिया एवं परम्परा के अनुरूप यह निर्णय* लिया गया था कि न्यायालयीन नोटिस का प्रतिउत्तर नहीं दिया जाएगा तथा नोटिस एवं संबंधित अभिलेख मान. विधि मंत्री, मध्य प्रदेश शासन को अग्रेषित करते हुए इस संबंध में वास्तविक संवैधानिक स्थिति तथा संसद एवं विधान मण्डलों की सुस्थापित परम्पराओं से उच्चतम न्यायालय को अवगत करने हेतु जैसे उचित समझे वैसी कार्यवाही करने हेतु निर्देशित किया गया था । आपका निर्णय परम्परा के अनुरूप सही है किन्तु प्रेस ने इस स्थापित प्रक्रिया को भी इस प्रकार सनसनीपूर्ण तरीके से प्रचारित एवं प्रसारित किया जैसे कि कोई पहली बार ऐसा निर्णय लिया हो और अत्यंत गंभीर स्थिति पैदा हो गई हो । प्रेस मीडिया की यह प्रवृत्ति भी विचारणीय है ।

सभापति जी, दसवीं लोकसभा में दिनांक 11 मार्च 1996 को अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान न करने के लिए झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के सदस्यों को धन देने तथा उन्हें प्रलोभन देने संबंधित विशेषाधिकार प्रश्न पर तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष मान. श्री शिवराज पाटिल ने निम्नानुसार टिप्पणी की थी –''**यह मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है और वही प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उचित निर्णय ले सकता है ।**''**

इतना ही नहीं, जब दिनांक 5 अक्टूबर, 1996 को 11वीं लोक सभा के सदस्य श्री शिबू सोरेन ने एवं 10वीं लोक सभा के सदस्य श्री सूरज मण्डल, श्री सायमन मरांडी एवं श्री शैलेन्द्र महतो द्वारा 11वीं लोक सभा के अध्यक्ष श्री पी. ए. संगमा को यह विधिक प्रश्न भेजा कि –''**सभा में मतदान करने के संबंध में सभा के किसी सदस्य के विरूद्ध रिश्वत मामले का आरोप विशेषाधिकार भंग है, जिसकी जॉच केवल सभा द्वारा ही की जा सकती है और जो न्यायालय में वाद योग्य नहीं है ।**'' श्री शिबू सोरेन को लिखित में यह सूचित किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 105 के अंतर्गत सदस्यों की उन्मुक्ति की व्याप्ति एवं विस्तार के संबंध में उनके अभ्यावेदन में उठाये गये संवैधानिक एवं कानूनी मुद्दों का सूक्ष्म निर्वचन आवश्यक है और इसलिए ऐसे मुद्दे उठाने का समुचित मंच न्यायालय है । तद्नुसार सदस्य से अनुरोध किया गया कि यदि वह चाहता है तो इस संवैधानिक और विधिक मुद्दे को वे अपने अधिवक्ता के माध्यम से समुचित न्यायालय में उठा सकता है और न्यायालयीन कार्यवाही के दौरान ही यह सम्पूर्ण मामला उच्चतम न्यायालय के पॉच न्यायाधिशों की संविधान पीठ को संदर्भित कर दिया गया ।

* मध्य प्रदेश विधान सभा कार्यवाही दिनांक 22.7.1991

** संसदीय पद्धति और व्यवहार, कौल शकधर, पृष्ठ 234 से 245

निरंतर..........

माननीय सभापति महोदय, मेरे मत में यह हमारी सबसे बड़ी चूक थी, जब हमने संविधान के अनुच्छेद 105 के अन्तर्गत हमारे क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले विशेषाधिकार का मामला भी उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णित करने हेतु छोड़ दिया और उच्चतम न्यायालय ने संसदीय विशेषाधिकारों की व्याख्या करते हुये यह ठहराया कि यदि सभा के बाहर रिश्वत प्राप्त कर सभा के अंदर कार्यवाही की जाती है अथवा मत दिया जाता है तो वह न्यायालय के विचार की विषय वस्तु नहीं है **किन्तु यदि रिश्वत प्राप्त कर सभा के अन्दर कोई कार्यवाही नहीं की जाती और मत नहीं दिया जाता है तो वह न्यायालय के विचार की विषय वस्तु है*** और इस प्रकार **उच्चतम न्यायालय ने संसदीय विशेषाधिकारों के संबंध में अब यह स्थापित कर दिया है कि विशेषाधिकारों के मामलों में सभा ही निर्णय कर सकती है ।**

अभी जो 11 सदस्यों की सदस्यता समाप्त की गई है, वे उच्चतम न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 के परिप्रेक्ष्य में गए हैं । किसी भी नागरिक को न्यायालय में जाने का, न्यायालय में याचिका दायर करने का संविधान प्रदत्त अधिकार है और न्यायालय के लिए यह वांछनीय है कि वह प्रतिवादीगणों को नोटिस जारी करें । **निष्कासित कुछ सदस्यों से मुझे जानकारी प्राप्त हुई है, यह भी कहा है कि आपरेशन दुर्योधन में जो वीडियो क्लिपिंग्स् दिखायी गई है, वे प्रश्न सभा में किए ही नहीं गए,** इसका अर्थ यह हुआ कि सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने की संसद की कार्यवाही को संसदीय विशेषाधिकारों के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त नहीं है, इसके साथ ही उन्होंने यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि उन्हें बचाव का पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किया गया ।

निष्कर्ष यह हुआ कि जब कार्यवाही को विशेषाधिकारों के संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है और याचिका में इस आधार के साथ–साथ यह भी प्रतिपादित किया गया है कि याचिकाकारों को उनके बचाव के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हुआ, तब ऐसी स्थिति में महत्वपूर्ण बिन्दु जो न्याय निर्णित होगा, वह यह है कि – **क्या सदस्यों के मूलभूत अधिकारों (अनुच्छेद 14) का हनन हुआ तथा विधान मण्डलों को किसी सदस्य की सदस्यता समाप्त करने का अधिकार है अथवा नहीं ?** क्योंकि इसके पूर्व इस बिन्दु पर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय एवं पंजाब उच्च न्यायालय ने दो भिन्न–भिन्न विरोधाभासी निर्णय दिए हैं और अब विधि उच्चतम न्यायालय के द्वारा स्थापित की जानी है ।

*संसदीय पद्धति और व्यवहार, कौल शकधर, पृष्ठ 234 से 245

निरंतर..........

मध्य प्रदेश विधान सभा में वर्ष 1967 में सभा के अन्दर सदस्यों के अशोभनीय व्यवहार एवं आसंदी की गंभीर अवमानना करने के कारण **श्री पंढरीराव कृदत्त एवं श्री यशवंतराव मेघावाले** की सदस्यता समाप्त की गई थी और उन्होंने भी मध्य प्रदेश विधान मण्डल की इस सदस्यता समाप्त करने की कार्यवाही को उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी । मैं मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का न्याय निर्णय* देख रहा था, उसमें भी मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अध्यक्ष विधान सभा एवं सचिव विधान सभा को याचिका की सूचना जारी कर उत्तर चाहा था और दोनों की ही ओर से कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया अपितु प्रतिवादी के रूप में न होकर सचिव विधान सभा ने प्रकरण के संबंध में तथ्यात्मक जानकारी उच्च न्यायालय को उनके न्याय निर्णय में सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत की थी । माननीय सभापति जी, मुझे स्मरण है आपने एक बार कहा था – ''**संविधान में प्रत्येक अंग स्वतंत्र है और उसका सम्मान किया जाना चाहिए** ।'' यदि इस अवसर पर आप नहीं, महासचिव भी नहीं, किन्तु अन्यथा तरीके से चाहे प्रतिवादी के रूप में नहीं किन्तु महासचिव के रूप में अथवा एटार्नी जनरल के माध्यम से संसद वस्तुस्थिति उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखती तो मेरे मत में ज्यादा आदर्श स्थिति होती । क्योंकि विधि को स्थापित करने के लिए हमारे संविधान में अनुच्छेद 141 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय ही अधिकार सम्पन्न है और विशेषाधिकार जिन्हें अभी तक संहिताबद्ध नहीं किया गया है और संहिताबद्ध न करने का निर्णय भी कमोबेश ले लिया गया है, अन्यथा स्थिति में **उच्चतम न्यायालय के द्वारा विधान मण्डलों को किसी सदस्य की सदस्यता समाप्त करने का अधिकार प्राप्त है अथवा नहीं** ? न्याय निर्णित कर विधि को स्थापित करना है।

माननीय सभापति जी एक सप्ताह के अंदर जिस प्रकार से जल्दबाजी में दोषारोपित सदस्यों को सदन के नेता के प्रस्ताव पर सदस्यता से वंचित किया गया, यह अत्यंत गंभीर एवं विचारणीय बिन्दु है । संसद की आचरण समिति और विशेषाधिकार समिति के होते हुए पृथक से समिति का गठन और समिति के द्वारा सप्ताह भर में संपूर्ण कार्यवाही आपाधापी में सम्पादित करना तथा सदस्यों के संसदीय कर्तव्यों को प्रभावित करने वाले मीडिया के प्रतिनिधियों को जो कि वास्तव में सभा की अवमान और विशेषाधिकार भंग के दोषी है, क्योंकि उन्होंने सदस्यों के संसदीय कर्तव्यों को प्रभावित किया है, को बिलकुल ऐसे छोड़ दिया है जैसे कि उन्होंने कोई परोपकारी एवं पवित्र कार्य किया हो । सदन के नेता ने सत्र के अंतिम दिन सभा में निष्कासन का प्रस्ताव पढ़ा और बहुमत के आधार पर सदस्यों को निष्कासित कर दिया । यह सम्पूर्ण मामला अत्यंत गंभीरपूर्वक विचारणीय है ।

* **1966 JLJ 833 (CN 151)**

निरंतर..........

माननीय सभापति जी, संविधान में चाहे वह संसद हो या प्रदेशों के विधान मण्डल, सबका अपना पृथक अस्तित्व है और सब स्वतंत्र है, हर मायने में स्वतंत्र है, चाहे वह प्रक्रिया का निर्धारण हो अथवा अन्यथा स्थिति । किन्तु सभापति महोदय व्यवहार में ऐसा नहीं है । राज्यों के विधान मण्डल संसद के नक्शे–कदम पर चलते हैं । संसद की नजीरें हमारे लिए (राज्य विधान मण्डलों) उदाहरण होती हैं । संसद में जो प्रक्रिया निर्धारित होती है, सभी राज्य के विधान मण्डल वैसी ही प्रक्रिया का अनुपालन करते हैं । संविधान के अनुच्छेदों की भावना और वर्तमान में उनके व्यावहारिक स्वरूप में अन्तर आज क्या हम सबसे छिपा हुआ है ? नैतिक मूल्यों का कितना ह्रास हुआ है ? आज जब हम यहॉ पर विचार–विमर्श करके किसी निष्कर्ष पर पहुॅचे अथवा कोई रिजाल्यूशन पास करें, वह राज्य के विधान मण्डलों के लिए एक नजीर होगा ।

सभा के अंदर के आचरण एवं सभा के बाहर के आचरण में हमें विभेद करना पड़ेगा । आचरण, कदाचरण की किस श्रेणी के अंतर्गत है, इसको भी स्थापित करना चाहिए । सदस्यों के निष्कासन के मामले में यदि इस सदन के नेता के प्रस्ताव पर बहुमत के द्वारा अल्पमत वह भी प्रमुख विपक्षी दल के विचारों को बिना सम्मान दिए हुए, समिति के सदस्य की विमत टिप्पणी एवं सभा में अल्पमत को केवल संख्या बल के आधार पर पूरी तरीके से नकार दिया जाएगा तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं । आने वाले वर्षों में विधान मण्डलों में बहुमत के दम्भ में बहुमत का कोई नेता अल्पमत के सदस्य के किसी ऐसे कार्य अथवा व्यवहार, जो चाहे वह उससे अनजाने में अथवा किसी षड़यंत्र के अंतर्गत उसे फॅसा दिया गया हो और उस षड़यंत्र की परिणति के रूप में सभा में उसके निष्कासन का प्रस्ताव हो सकता है । मैंने आरंभ में ही कहा था कि आज की बैठक के बहुत दूरगामी परिणाम होंगे । सभापति जी मेरा आपसे आग्रह है कि इन सब बिन्दुओं पर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार करें ।

माननीय सभापति जी, मैं आपके इस मत से पूरी तरीके से सहमत हूॅ कि विधान मण्डलों के अध्यक्ष को सभा से संबंधित किसी कार्यवाही के मामले में न्यायालय द्वारा सूचना जारी नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि अध्यक्ष तो केवल नियमों के अंतर्गत कार्यवाही का संचालन करता है । वस्तुतः कार्यवाही सदन के नेता के प्रस्ताव व उसकी इच्छा के अनुरूप होती है और बहुमत से होती है, महासचिव अथवा सचिव को भी ऐसे मामलों में प्रतिवादी बनाया जाना औचित्यपूर्ण नहीं है किन्तु ये सारी गूढ़ तकनीकी बातें याचिकाकार को ज्ञात हो अथवा वह इन गूढ़ बातों के अनुरूप ही याचिका को प्रारूपित करे, यह हमारे नियंत्रण की बात नहीं है और न्यायालय के लिए भी यह निर्देशित करना सम्भव नहीं है कि ''**प्रतिवादी**'' के रूप में याचिकाकार किसको रखे अथवा किसे नहीं, और न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि याचिकाकार ने अपनी याचिका में जिन्हें प्रतिवादी बनाया है, उनको सूचना जारी करे । ऐसी स्थिति में जब भी ऐसे अवसर उपस्थित हो, जो यदा–कदा होते हैं, विधान मण्डल जो कि संविधान के अनुरूप

निरंतर..........

प्रजातंत्र के संचालन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है और जिसके ऊपर संसदीय प्रजातंत्र के संचालन की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है । इस तथ्य को न्यायालय के संज्ञान में लाये कि संसद/विधान मण्डल को अथवा इनके महासचिव/सचिव को सूचना जारी किया जाना औचित्यपूर्ण नहीं है तथा शासन को याचिका मूलतः भेजते हुए एटार्नी जनरल/एडव्होकेट जनरल के माध्यम से स्थिति न्यायालय के समक्ष रखने हेतु निर्देशित कर दिया जाए ।

सदस्यों के सभा के बाहर का आचरण जिससे उनके सभा के अन्दर का आचरण भी प्रभावित हुआ हो तो जो विशेषाधिकार सभा की अवमानना की श्रेणी में आता हो या सदस्यों का ऐसा आचरण जो उनसे अपेक्षित आचरण के विपरीत हो, कि जॉच के लिए पृथक समिति गठित किए जाने की वर्ष 1952 की नजीर/परम्परा को अब आधार बनाना क्या उचित है ? इसे बदलना होगा । संसद ने अनेक वर्षों के अनुभव, विभिन्न देशों में आचरण समिति की प्रक्रिया के अध्ययन के पश्चात् न केवल "**आचरण समिति**" का गठन* किया है अपितु उस संबंध में विस्तार से नियम भी बनाये हैं और संसद की तर्ज पर अनेक राज्य विधान मण्डलों ने भी आचरण समिति का गठन किया है। विशेषाधिकार भंग अथवा सभा के अवमान के मामलों में भी 55 वर्षों के संसदीय इतिहास में अनेकों पूर्वोदाहरण और न्याय निर्णय उपलब्ध हैं, अतः मेरे मत में सदस्यों के आचरण अथवा विशेषाधिकार भंग या अवमान के मामले जॉच के लिए इन्हीं समितियों को संदर्भित किया जाना चाहिए ताकि दोषारोपित सदस्यों को न केवल अपने बचाव के युक्तियुक्त अवसर प्राप्त हो सके अपितु जब यह सदन न्यायालय के सदृश्य किसी सदस्य को दण्डित करने का निर्णय लें, तब उसके समक्ष सम्पूर्ण तथ्य एवं जॉच के परिणाम विचार के लिए प्रस्तुत हों और फिर बहुमत से नहीं अपितु सर्वसम्मत रूप से सदस्यों को दण्डित किया जा सके ।

मेरा तो अन्त में यह कहना है कि उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ को शासन के माध्यम से न केवल सम्पूर्ण तथ्य न्यायालय के विचार के लिए रखना चाहिए अपितु यदि ऐसा हो गया हो कि किसी सदस्य को सभा के बाहर के आचरण से उसके सभा के अंदर का संसदीय कार्य प्रभावित न हुआ हो तो ऐसे सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने के फैसले पर सदन को ही पुनर्विचार करना चाहिए ताकि न्यायालयों को सभा के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त न हो ।

* अध्यक्ष (लोकसभा) द्वारा गठन दिनांक 28 अप्रैल, 2005

————

निरंतर..........